ARYAVART SHODH VIKAS PATRIKA
RNI TITLED NO. UPBIL**04292**
RNI REG. NO. UPBIL/**2014/66218** **PP. No.- 244-247**

I S S N NO. - 2347 – 2944 (Print)
e–I S S N NO.- 2582 – 2454 (Online)
Vol.-20, No.- III, Issues-41, YEAR- July-Sept. 2026

बौद्ध कालीन सामाजिक संरचना एवं सांस्कृतिक स्थिति (बौद्ध ग्रंथों पर आधारित एक विश्लेषणात्मक अध्ययन)

डॉ0 शिवकुमार सिंह
सहायक प्राध्यापक– इतिहास विभाग, ए0 एन0 एस0 कॉलेज, जहानाबाद (बिहार) भारत

Received-02.08.2026, Revised-10.08.2026, Accepted-17.08.2026, **E-mail:sheokumarsingh795@gmail.com**

सारांशः *भारतीय इतिहास में बौद्ध काल सामाजिक एवं सांस्कृतिक परिवर्तन की दृष्टि से अत्यंत महत्त्वपूर्ण युग माना जाता है। सामान्यतः छठी शताब्दी ईसा पूर्व से मौर्यकाल तक के व्यापक ऐतिहासिक परिवेश को बौद्ध युग के संदर्भ में देखा जाता है। इस समय उत्तर भारत में नगरों का विकास, व्यापार–वाणिज्य का विस्तार, महाजनपदों का उदय, कृषि उत्पादन में वृद्धि तथा नवीन धार्मिक–दार्शनिक आंदोलनों का प्रसार हो रहा था। इसी परिवेश में गौतम बुद्ध के उपदेशों ने तत्कालीन सामाजिक एवं सांस्कृतिक जीवन को नई वैचारिक दिशा प्रदान की। बौद्ध ग्रंथकृविशेषतः दीघनिकाय, मज्झिमनिकाय, अंगुत्तरनिकाय, संयुत्तनिकाय, विनयपिटक, सुत्तनिपात, धम्मपद, जातक तथा थेरीगाथाकृतत्कालीन समाज की संरचना और सांस्कृतिक जीवन के महत्त्वपूर्ण स्रोत हैं। दीघनिकाय में 34 सुत्तों का संकलन है और उसका सिगालोवाद सुत्त गृहस्थ जीवन, पारिवारिक संबंधों, गुरु–शिष्य, स्वामी–सेवक तथा मित्रता संबंधों पर विशेष प्रकाश डालता है।*

बौद्ध ग्रंथों से पता चलता है कि तत्कालीन समाज में वर्ण–आधारित विभाजन विद्यमान था, किंतु बाद के कठोर जाति–व्यवस्था के समान उसकी सीमाएँ सर्वत्र अपरिवर्तनीय नहीं थीं। अम्बट्ठ सुत्त तथा वासेट्ठ सुत्त में जन्माधारित श्रेष्ठता की आलोचना और आचरण को मनुष्य की वास्तविक श्रेष्ठता का आधार मानने की प्रवृत्ति दिखाई देती है। बौद्ध संघ ने विभिन्न सामाजिक पृष्ठभूमि के लोगों को धार्मिक समुदाय में प्रवेश का अवसर दिया। स्त्रियों की स्थिति भी केवल पारंपरिक घरेलू भूमिका तक सीमित नहीं थी; भिक्षुणी संघ की स्थापना तथा थेरीगाथा में महिलाओं की आध्यात्मिक अनुभूतियाँ इसका प्रमाण हैं।

सांस्कृतिक दृष्टि से यह काल धार्मिक बहुलता, लोकविश्वास, शिक्षा, कला, साहित्य, नगर संस्कृति, व्यापारिक गतिविधियों तथा नैतिक मूल्यों के विकास का काल था। बौद्ध धर्म ने अहिंसा, करुणा, मैत्री, मध्यम मार्ग, नैतिकता और मानवतावाद को सामाजिक जीवन के केंद्र में स्थापित करने का प्रयास किया। प्रस्तुत लेख का उद्देश्य बौद्ध ग्रंथों के आधार पर बौद्धकालीन सामाजिक संरचना एवं सांस्कृतिक स्थिति का विश्लेषण करना तथा भारतीय समाज पर उसके प्रभाव को स्पष्ट करना है।

कुंजीभूत शब्द– बौद्ध काल, सामाजिक संरचना, वर्ण व्यवस्था, जाति, संस्कृति, स्त्रियाँ, परिवार, बौद्ध संघ,जातक, त्रिपिटक, भिक्षुणी संघ।

प्रस्तावना– भारतीय इतिहास में ईसा पूर्व छठी शताब्दी को परिवर्तन और संक्रमण का युग कहा जा सकता है। इस समय वैदिक परंपरा के साथ–साथ अनेक श्रमण परंपराएँ विकसित हुईं। जैन धर्म और बौद्ध धर्म इसी व्यापक श्रमण आंदोलन के प्रमुख प्रतिनिधि थे। राजनीतिक स्तर पर सोलह महाजनपदों का उल्लेख मिलता है, जिनमें मगध, कोशल, वत्स और अवंति विशेष रूप से प्रभावशाली थे। कृषि उत्पादन में वृद्धि, लोहे के व्यापक उपयोग, व्यापारिक मार्गों के विस्तार और नगरों के विकास ने सामाजिक संरचना में परिवर्तन उत्पन्न किया।

इसी ऐतिहासिक पृष्ठभूमि में सिद्धार्थ गौतम ने ज्ञान प्राप्ति के बाद मध्यम मार्ग, चार आर्य सत्यों और अष्टांगिक मार्ग का उपदेश दिया। बुद्ध का मूल उद्देश्य दुःख, उसके कारण और उससे मुक्ति का मार्ग बताना था, किंतु उनके विचारों के सामाजिक परिणाम भी व्यापक रहे। उन्होंने मनुष्य के मूल्यांकन में जन्म की अपेक्षा उसके कर्म, आचरण और नैतिक चरित्र को अधिक महत्त्व दिया। बौद्ध ग्रंथ इस काल के सामाजिक इतिहास के महत्त्वपूर्ण स्रोत हैं। विनयपिटक से संघ के संगठन, अनुशासन और भिक्षु–भिक्षुणियों के जीवन की जानकारी मिलती है। सुत्तपिटक तत्कालीन धार्मिक, सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक जीवन का चित्र प्रस्तुत करता है। जातक कथाएँ तत्कालीन समाज के दैनिक जीवन, व्यवसाय, व्यापार, परिवार, नगर, ग्राम, शिक्षा और लोकाचार के अनेक उदाहरण प्रस्तुत करती हैं। यह ध्यान रखना आवश्यक है कि बौद्ध ग्रंथ आधुनिक अर्थ में इतिहास–ग्रंथ नहीं हैं। उनमें धार्मिक एवं नैतिक उद्देश्य प्रमुख है। अतः उनके विवरणों का आलोचनात्मक अध्ययन आवश्यक है। फिर भी इन ग्रंथों में सुरक्षित सामाजिक जीवन के अनेक संकेत उस समय की सामाजिक संरचना को समझने के लिए अत्यंत उपयोगी हैं।

बौद्धकालीन सामाजिक संरचना– वर्ण एवं सामाजिक विभाजनः बौद्ध ग्रंथों में समाज के चार प्रमुख वर्णोंकृखत्तिय (क्षत्रिय), ब्राह्मण, वेस्स (वैश्य) और सुद्द (शूद्र)कृका उल्लेख मिलता है। अम्बट्ठ सुत्त में वर्ण संबंधी बहस स्पष्ट रूप से दिखाई देती है। उपलब्ध बौद्ध साहित्य के अध्ययन से यह भी पता चलता है कि ये सामाजिक श्रेणियाँ उस समय सामाजिक वास्तविकता का एक महत्त्वपूर्ण हिस्सा थीं। क्षत्रिय राजनीतिक सत्ता और शासकीय प्रतिष्ठा से जुड़े थे। बुद्ध स्वयं शाक्य क्षत्रिय कुल से संबंधित थे। ब्राह्मण धार्मिक ज्ञान, यज्ञ तथा वैदिक परंपराओं से संबद्ध थे। वैश्य वर्ग कृषि, पशुपालन और व्यापार से जुड़ा था। शूद्र तथा अन्य निम्न सामाजिक समूह सेवा और विभिन्न श्रम–व्यवसायों में संलग्न थे। किन्तु बौद्ध साहित्य का महत्त्वपूर्ण पक्ष यह है कि वह जन्म को नैतिक श्रेष्ठता का अंतिम आधार स्वीकार नहीं करता। वासेट्ठ सुत्त में यह विचार व्यक्त होता है कि मनुष्य को केवल जन्म के आधार पर ब्राह्मण नहीं कहा जा सकता; उसके आचरण और गुण उसकी वास्तविक पहचान निर्धारित करते हैं। इस प्रकार बौद्ध चिंतन ने जन्माधारित श्रेष्ठता के स्थान पर नैतिक कर्म को महत्त्व प्रदान किया। यह भी ध्यान रखना चाहिए कि इसका अर्थ यह नहीं कि बुद्ध के समय वर्ण–भेद पूरी तरह समाप्त हो गया था। बौद्ध ग्रंथ स्वयं सामाजिक भेदभाव, प्रतिष्ठा और जन्मगत पहचान के अस्तित्व की सूचना देते हैं। इसलिए बौद्ध धर्म को तत्कालीन जाति–व्यवस्था का पूर्ण राजनीतिक उन्मूलन करने वाला आंदोलन मानना ऐतिहासिक रूप से अतिशयोक्ति होगी। अधिक उचित यह है कि बौद्ध धर्म ने धार्मिक एवं नैतिक क्षेत्र में जन्म–आधारित श्रेष्ठता को चुनौती दी।

सामाजिक गतिशीलता और बौद्ध संघ– बौद्ध संघ सामाजिक समावेशन की दृष्टि से एक महत्त्वपूर्ण संस्था थी। संघ में विभिन्न सामाजिक पृष्ठभूमियों के व्यक्तियों के प्रवेश के उदाहरण मिलते हैं। उपालि, जो परंपरा के अनुसार नाई थे, संघ में अत्यंत प्रतिष्ठित हुए। इसी प्रकार सुनीत जैसे निम्न सामाजिक पृष्ठभूमि के व्यक्तियों के संघ में प्रवेश का उल्लेख मिलता है। इससे स्पष्ट होता है कि संघ के भीतर व्यक्ति की आध्यात्मिक उपलब्धि को जन्म की अपेक्षा अधिक महत्त्व प्राप्त था। बौद्ध साहित्य पर आधारित आधुनिक अध्ययन भी यह रेखांकित करते हैं कि संघ ने विभिन्न सामाजिक समूहों को धार्मिक जीवन में भागीदारी का अवसर प्रदान

अनुरूपी लेखक/ संयुक्त लेखक

I S S N NO. - 2347 – 2944 (Print)
e–I S S N NO.- 2582 – 2454 (Online)
Vol.-20, No.- III, Issues-41, YEAR- July-Sept. 2026

किया। इस व्यवस्था का सामाजिक प्रभाव महत्त्वपूर्ण था। व्यक्ति की पहचान केवल परिवार, वर्ण या पेशे से नहीं, बल्कि उसके नैतिक और आध्यात्मिक जीवन से भी निर्धारित होने लगी।

परिवार और गृहस्थ जीवन– बौद्ध कालीन समाज की मूल इकाई परिवार था। संयुक्त परिवार, माता–पिता, पति–पत्नी, पुत्र–पुत्री और अन्य पारिवारिक संबंधों का उल्लेख बौद्ध ग्रंथों में मिलता है। सिगालोवाद सुत्त गृहस्थ के सामाजिक कर्तव्यों का विस्तृत विवेचन करता है। इसमें माता–पिता और संतान, पति–पत्नी, गुरु–शिष्य, मित्र, नियोक्ता–कर्मचारी तथा धार्मिक व्यक्तियों के बीच पारस्परिक दायित्वों की चर्चा की गई है। बुद्ध ने माता–पिता की सेवा, पति–पत्नी के परस्पर सम्मान, संतान के पालन–पोषण, मित्रों के प्रति निष्ठा और सेवकों के प्रति उचित व्यवहार को सामाजिक नैतिकता का आवश्यक हिस्सा माना। इस प्रकार बौद्ध नैतिकता केवल संन्यासियों के लिए नहीं थी; गृहस्थों के लिए भी स्पष्ट सामाजिक आचार–संहिता प्रस्तुत की गई थी।

स्त्रियों की स्थिति– बौद्धकालीन समाज में स्त्रियों की स्थिति जटिल थी। एक ओर पितृसत्तात्मक पारिवारिक व्यवस्था विद्यमान थी और विवाह, मातृत्व तथा घरेलू उत्तरदायित्व स्त्री जीवन के प्रमुख आधार थे; दूसरी ओर बौद्ध धर्म ने महिलाओं के आध्यात्मिक व्यक्तित्व को महत्त्वपूर्ण मान्यता दी। महापजापती गौतमी के नेतृत्व में भिक्षुणी संघ की स्थापना बौद्ध इतिहास की महत्त्वपूर्ण घटना थी। थेरीगाथा में अनेक भिक्षुणियों की आध्यात्मिक अनुभूतियाँ संरक्षित हैं। इससे स्पष्ट होता है कि महिलाएँ केवल परिवार की सदस्य नहीं, बल्कि धार्मिक एवं आध्यात्मिक जीवन की स्वतंत्र साधिका भी बन सकती थीं। हालाँकि भिक्षुणी संघ को भिक्षु संघ की तुलना में अतिरिक्त अनुशासनात्मक नियमों के अंतर्गत रखा गया। इससे यह स्पष्ट होता है कि बौद्ध समुदाय भी अपने समय की लैंगिक सामाजिक संरचना से पूरी तरह मुक्त नहीं था। अतः बौद्ध धर्म का स्त्री–संबंधी प्रभाव उदारीकरण और परंपराकृदोनों का मिश्रण था।

दास और सेवक– बौद्ध ग्रंथों में दासों तथा सेवकों का उल्लेख मिलता है। दास घरेलू सेवा, कृषि अथवा अन्य कार्यों में लगे हो सकते थे। कुछ लोग युद्धबंदी, दंड अथवा आर्थिक परिस्थितियों के कारण दास बनते थे। बौद्ध साहित्य में दास–मुक्ति के उल्लेख भी मिलते हैं। उपलब्ध साहित्यिक साक्ष्यों से यह संकेत मिलता है कि दासता अस्तित्व में थी, परंतु उसे बाद के कुछ विशाल दास–आधारित साम्राज्यों जैसी आर्थिक संस्था के रूप में देखना उचित नहीं होगा। बौद्ध नैतिकता ने स्वामी को सेवकों के प्रति मानवीय व्यवहार का निर्देश दिया।सिगालोवाद सुत्त में नियोक्ता व कर्मचारी के पारस्परिक दायित्वों की चर्चा इस दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है।

आर्थिक जीवन और सामाजिक संरचना– कृषिः कृषि बौद्धकालीन अर्थव्यवस्था का आधार थी। धान, गेहूँ, जौ आदि फसलों का उत्पादन किया जाता था। ग्रामीण जीवन में किसान, खेतिहर श्रमिक और पशुपालक महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते थे। बौद्ध ग्रंथों में खेत, हल, बैल, सिंचाई, फसल और कृषि–कार्य से संबंधित अनेक उपमाएँ मिलती हैं। इससे यह स्पष्ट होता है कि कृषि तत्कालीन समाज की दैनिक चेतना का महत्त्वपूर्ण हिस्सा थी।

व्यापार और वाणिज्यः बौद्धकाल में व्यापारिक गतिविधियों का पर्याप्त विकास हुआ। व्यापारी कारवाँ, समुद्री व्यापार, लंबी दूरी के व्यापार और बाजारों के उल्लेख जातक कथाओं में मिलते हैं। व्यापारियों के लिए सेठी या श्रेष्ठी जैसे पदों का उल्लेख सामाजिक–आर्थिक महत्त्व को दर्शाता है। नगरों के विकास के साथ व्यापारी और शिल्पकार समुदायों का प्रभाव बढ़ा। इसी आर्थिक पृष्ठभूमि में बौद्ध धर्म को व्यापारी वर्ग का व्यापक समर्थन प्राप्त हुआ।

शिल्प और व्यवसायः बौद्ध ग्रंथों में अनेक व्यवसायों का उल्लेख मिलता हैः कुम्हार, लोहार, बढ़ई, सुनार, बुनकर, नाई, मछुआरे, किसान, व्यापारी, चिकित्सक आदि। इससे पता चलता है कि तत्कालीन अर्थव्यवस्था में श्रम–विभाजन विकसित हो चुका था। व्यवसाय और सामाजिक प्रतिष्ठा के बीच संबंध था, किंतु बौद्ध संघ ने व्यक्ति की धार्मिक योग्यता को व्यवसाय से स्वतंत्र रूप में स्वीकार किया।

नगरीकरण और सामाजिक परिवर्तनः बौद्ध काल में राजगृह, श्रावस्ती, वाराणसी, वैशाली, कौशांबी और चंपा जैसे नगरों का विकास हुआ। नगर राजनीतिक सत्ता, व्यापार, शिल्प, शिक्षा और धार्मिक गतिविधियों के केंद्र बन रहे थे। नगरों के विकास से समाज में नए वर्गों का उदय हुआ। व्यापारी, शिल्पकार, साहूकार, परिवहनकर्ता तथा विभिन्न सेवाओं से जुड़े लोग सामाजिक जीवन में अधिक प्रभावशाली बने। इससे पारंपरिक ग्रामीण और वैदिक सामाजिक संरचना में परिवर्तन आया। बौद्ध संघ भी इस नगरीय वातावरण से जुड़ा हुआ था। बुद्ध के अनेक उपदेश नगरों और व्यापारिक मार्गों के आसपास दिए गए। विहार और संघाराम धार्मिक गतिविधियों के साथ–साथ शिक्षा और सामाजिक संवाद के केंद्र बनते गए।

बौद्धकालीन सांस्कृतिक स्थिति– धार्मिक संस्कृतिः बौद्ध काल धार्मिक बहुलता का युग था। वैदिक धर्म के साथ–साथ बौद्ध, जैन और अनेक श्रमण तथा लोकधार्मिक परंपराएँ सक्रिय थीं। बौद्ध धर्म ने यज्ञ–केंद्रित धार्मिकता के स्थान पर नैतिक आचरण, ध्यान, प्रज्ञा और करुणा को महत्त्व दिया। चार आर्य सत्य, अष्टांगिक मार्ग, पंचशील और मध्यम मार्ग बौद्ध सांस्कृतिक दृष्टिकोण के प्रमुख आधार बने।

नैतिक संस्कृतिः बौद्ध संस्कृति का केंद्रीय तत्व शील और नैतिकता था। पंचशील में प्राणी–हत्या से बचना, चोरी न करना, कामाचार में दुराचार से बचना, असत्य भाषण से बचना तथा मादक पदार्थों से दूर रहना प्रमुख थे। इस नैतिकता का उद्देश्य केवल व्यक्तिगत मुक्ति नहीं था। इससे सामाजिक जीवन में अहिंसा, विश्वास,संयम और परस्पर सम्मान को प्रोत्साहित करने का प्रयास किया।

अहिंसा और करुणाः बौद्ध संस्कृति में करुणा और मैत्री को विशेष स्थान मिला। मेत्ता अर्थात मैत्री तथा करुणा सभी प्राणियों के प्रति सद्भाव की भावना को विकसित करते हैं। बौद्ध चिंतन में मनुष्य को दूसरे मनुष्य से जोड़ने वाली नैतिक चेतना विकसित हुई। यह दृष्टिकोण सामाजिक संघर्षों को कम करने तथा शांतिपूर्ण सह–अस्तित्व को बढ़ावा देने वाला था।

शिक्षा एवं बौद्धिक संस्कृतिः बौद्ध संघ शिक्षा का महत्त्वपूर्ण केंद्र बना। भिक्षु और भिक्षुणियाँ धार्मिक ग्रंथों, दर्शन, तर्क, भाषा और नैतिक विषयों का अध्ययन करते थे। मौखिक परंपरा के माध्यम से बुद्ध के उपदेशों को सुरक्षित रखा गया। बाद में बौद्ध विहार उच्च शिक्षा के केंद्रों में परिवर्तित हुए। नालंदा जैसे संस्थानों का विकास इस परंपरा का चरम रूप था, यद्यपि इसका पूर्ण विकास बौद्धकाल के बाद के चरणों में हुआ। बौद्ध साहित्य ने पालि भाषा के विकास में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। संस्कृत के साथ–साथ पालि और प्राकृत भाषाओं में धार्मिक एवं साहित्यिक अभिव्यक्ति का विस्तार हुआ।

साहित्यिक संस्कृति– बौद्ध साहित्य अत्यंत व्यापक है। इसके प्रमुख अंग हैं:

1. **विनयपिटक–** संघ के अनुशासन और संगठन का स्रोत।
2. **सुत्तपिटक–** बुद्ध के उपदेश और संवाद।

3. अभिधम्मपिटक– दार्शनिक एवं मनोवैज्ञानिक विश्लेषण।

4. जातक– बुद्ध के पूर्वजन्मों की कथाएँ।

5. धम्मपद– नैतिक एवं दार्शनिक पद्य।

6. सुत्तनिपात– प्राचीन बौद्ध काव्य एवं उपदेश।

7. थेरीगाथा और थेरगाथा– भिक्षुणियों और भिक्षुओं की आध्यात्मिक अनुभूतियाँ।

इन ग्रंथों में तत्कालीन समाज के विभिन्न स्तरों का चित्रण मिलता है। जातक विशेष रूप से सामाजिक इतिहास के लिए महत्त्वपूर्ण हैं क्योंकि उनमें व्यापारी, किसान, राजा, शिल्पकार, स्त्री, सेवक, संन्यासी और सामान्य नागरिकों के जीवन से संबंधित कथाएँ मिलती हैं।

कला एवं स्थापत्य– बौद्ध धर्म के विकास के साथ स्तूप, चैत्य और विहार स्थापत्य की विशिष्ट परंपरा विकसित हुई। प्रारंभिक बौद्ध स्थापत्य में बुद्ध की प्रतिमा के स्थान पर प्रतीकोंकृजैसे धर्मचक्र, पदचिह्न, बोधिवृक्ष और स्तूपकृके माध्यम से बुद्ध की उपस्थिति व्यक्त की जाती थी। बाद के मौर्य एवं उत्तर–मौर्य काल में स्तूप स्थापत्य का विशेष विकास हुआ। साँची, भरहुत और अमरावती की कला परंपराएँ बौद्ध सांस्कृतिक विरासत की महत्त्वपूर्ण अभिव्यक्तियाँ हैं।

सामाजिक जीवन में बौद्ध धर्म का प्रभाव– जन्म की अपेक्षा कर्म पर बलः बौद्ध धर्म की सबसे महत्त्वपूर्ण सामाजिक देन यह थी कि उसने मनुष्य के नैतिक मूल्यांकन को जन्म की अपेक्षा कर्म और आचरण से जोड़ा। अम्बट्ठ तथा वासेट्ठ जैसे सुत्तों में वर्ण–श्रेष्ठता के प्रश्न पर बुद्ध के संवाद इस दृष्टि से उल्लेखनीय हैं।

सामाजिक समावेशनः बौद्ध संघ में विभिन्न सामाजिक वर्गों के व्यक्तियों का प्रवेश संभव था। इससे धार्मिक क्षेत्र में सामाजिक गतिशीलता को प्रोत्साहन मिला।

स्त्रियों के लिए धार्मिक अवसरः भिक्षुणी संघ की स्थापना ने महिलाओं को संगठित धार्मिक जीवन में प्रवेश का अवसर दिया। थेरीगाथा इस परिवर्तन की साहित्यिक अभिव्यक्ति है।

व्यापारी वर्ग का विकासः बौद्ध धर्म और व्यापारी समुदाय के बीच घनिष्ठ संबंध ने नगरों तथा व्यापारिक संस्कृति के विकास में योगदान दिया। दान, विहार निर्माण और संघ के संरक्षण की परंपरा में संपन्न गृहस्थों और व्यापारियों की भूमिका उल्लेखनीय थी।

नैतिक सामाजिक व्यवस्थाः सिगालोवाद सुत्त सामाजिक संबंधों को पारस्परिक दायित्वों के आधार पर व्यवस्थित करता है। इसमें माता–पिता, संतान, पति–पत्नी, गुरु–शिष्य, मित्र और नियोक्ता–कर्मचारी के संबंधों का नैतिक ढाँचा प्रस्तुत किया गया है।

बौद्ध संस्कृति की सीमाएँ– बौद्ध धर्म के सामाजिक प्रभाव का मूल्यांकन करते समय उसकी सीमाओं को भी समझना आवश्यक है। पहला, बौद्ध धर्म ने तत्कालीन वर्ण व्यवस्था को राजनीतिक और सामाजिक स्तर पर पूर्णतः समाप्त नहीं किया। उसने मुख्यतः जन्म–आधारित आध्यात्मिक श्रेष्ठता को चुनौती दी। दूसरा, बौद्ध संघ एक वैकल्पिक धार्मिक समुदाय था; वह संपूर्ण समाज का प्रत्यक्ष प्रशासनिक संगठन नहीं था। तीसरा, स्त्रियों को धार्मिक जीवन में प्रवेश मिला, लेकिन भिक्षुणी संघ के लिए अतिरिक्त नियम निर्धारित किए गए। इससे स्पष्ट होता है कि बौद्ध संस्था तत्कालीन पितृसत्तात्मक सामाजिक परिस्थितियों से पूरी तरह अलग नहीं थी। चौथा, बौद्ध ग्रंथ मुख्यतः धार्मिक एवं नैतिक उद्देश्य से रचे गए हैं। इसलिए उनमें वर्णित प्रत्येक घटना को प्रत्यक्ष ऐतिहासिक तथ्य मानने के बजाय अन्य पुरातात्त्विक, साहित्यिक और अभिलेखीय स्रोतों के साथ मिलाकर देखना चाहिए।

समग्र प्रभाव– बौद्धकालीन सामाजिक और सांस्कृतिक परिवर्तन को निम्न बिंदुओं में समझा जा सकता हैः

क्षेत्र	प्रमुख परिवर्तन
सामाजिक संरचना	वर्णगत पहचान के साथ नैतिक कर्म पर बल
धर्म	यज्ञ की अपेक्षा नैतिकता, ध्यान और प्रज्ञा पर जोर
स्त्री स्थिति	भिक्षुणी संघ के माध्यम से धार्मिक अवसर
शिक्षा	संघ और विहारों का ज्ञान–केंद्र के रूप में विकास
अर्थव्यवस्था	कृषि, व्यापार और शिल्प का विस्तार
नगरीकरण	नगरों और व्यापारिक केंद्रों का विकास
भाषा	पालि एवं प्राकृत भाषाओं का प्रसार
कला	स्तूप, चैत्य और विहार परंपरा
नैतिकता	अहिंसा, करुणा, मैत्री और संयम
सामाजिक संबंध	पारस्परिक दायित्व और सामाजिक उत्तरदायित्व

इस प्रकार बौद्ध धर्म ने केवल एक धार्मिक संप्रदाय के रूप में नहीं, बल्कि व्यापक सांस्कृतिक आंदोलन के रूप में भारतीय समाज को प्रभावित किया।

निष्कर्ष– बौद्ध ग्रंथों के अध्ययन से बौद्धकालीन समाज की एक जटिल और बहुस्तरीय तस्वीर सामने आती है। यह समाज न तो पूरी तरह समानतावादी था और न ही बाद के काल की तरह कठोर जातिगत सीमाओं से सर्वत्र नियंत्रित। वर्ण, सामाजिक प्रतिष्ठा, पेशा और जन्म का प्रभाव स्पष्ट था, किंतु इनके बीच गतिशीलता के पर्याप्त संकेत भी मिलते हैं। बुद्ध का महत्त्व इस तथ्य में है कि उन्होंने सामाजिक प्रतिष्ठा का एक वैकल्पिक नैतिक आधार प्रस्तुत किया। वासेट्ठ सुत्त में जन्म की अपेक्षा आचरण को महत्त्व और अम्बट्ठ सुत्त में ब्राह्मणीय श्रेष्ठता के दावे पर प्रश्न बौद्ध सामाजिक चिंतन की दिशा को स्पष्ट करते हैं।

बौद्ध संघ ने सामाजिक विविधता के बीच एक ऐसे धार्मिक समुदाय का निर्माण किया जिसमें व्यक्ति की आध्यात्मिक उपलब्धि को प्राथमिकता दी गई। महिलाओं के लिए भिक्षुणी संघ की स्थापना ने धार्मिक जीवन में उनके लिए एक नया अवसर खोला। सिगालोवाद सुत्त ने गृहस्थ समाज के लिए पारिवारिक एवं सामाजिक दायित्वों की व्यवस्थित नैतिक अवधारणा प्रस्तुत की। सांस्कृतिक स्तर पर बौद्ध धर्म ने अहिंसा, करुणा, मैत्री, संयम और नैतिक आचरण को प्रतिष्ठित किया। पालि साहित्य, जातक कथाएँ, स्तूप, विहार और संघीय संस्थाएँ भारतीय संस्कृति की स्थायी विरासत बनीं।

अतः कहा जा सकता है कि बौद्ध काल भारतीय सामाजिक एवं सांस्कृतिक इतिहास में परंपरा और परिवर्तन के बीच संवाद का काल था। बौद्ध ग्रंथ हमें एक ऐसे समाज की तस्वीर देते हैं जिसमें वर्ण–व्यवस्था, पितृसत्ता और सामाजिक असमानताएँ मौजूद थीं,

परंतु साथ ही नैतिक समानता, करुणा, व्यक्तिगत कर्म, धार्मिक सहभागिता और सामाजिक उत्तरदायित्व की नई अवधारणाएँ भी विकसित हो रही थीं। यही बौद्धकालीन सामाजिक–सांस्कृतिक परिवर्तन की सबसे महत्त्वपूर्ण विशेषता थी।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. प्राथमिक बौद्ध ग्रंथ।
2. दीघनिकाय, पालि त्रिपिटक।
3. मज्झिमनिकाय, पालि त्रिपिटक।
4. संयुत्तनिकाय, पालि त्रिपिटक।
5. अंगुत्तरनिकाय, पालि त्रिपिटक।
6. विनयपिटक, पालि त्रिपिटक।
7. सुत्तनिपात, पालि त्रिपिटक।
8. धम्मपद, पालि त्रिपिटक।
9. जातक, पालि साहित्य।
10. थेरीगाथा, पालि साहित्य।
11. थेरगाथा, पालि साहित्य।

प्रमुख सुत्त

12. अम्बट्ठ सुत्त, दीघनिकाय
13. सिगालोवाद सुत्त, दीघनिकाय।
14. सोनदण्ड सुत्त, दीघनिकाय।
15. वासेट्ठ सुत्त, मज्झिमनिकाय/सुत्तनिपात।
16. चक्कवत्ति–सीहनाद सुत्त, दीघनिकाय।

सिगालोवाद सुत्त विशेष रूप से गृहस्थ के सामाजिक एवं पारिवारिक दायित्वों का महत्त्वपूर्ण स्रोत है।

आधुनिक एवं सहायक ग्रंथ

17. Law, B. C., Social and Economic Conditions of Ancient India, विभिन्न संस्करण।
18. Rhys Davids, T. W. – C. A. F., Dialogues of the Buddha.
19. Rhys Davids, T. W., Buddhist India.
20. Kosambi, D. D., An Introduction to the Study of Indian History.
21. Basham, A. L., The Wonder That Was India.
22. Sharma, R. S., India ′s Ancient Past.
23. Thapar, Romila, Early India: From the Origins to AD 1300.
24. Gombrich, Richard, Theravāda Buddhism: A Social History from Ancient Benares to Modern Colombo.
25. Bodhi, Bhikkhu, The Connected Discourses of the Buddha.
26. Walshe, Maurice, The Long Discourses of the Buddha: A Translation of the Dīgha Nikāya.

*****